International Journal of Applied Research 2022; 8(5): 355-357

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2022; 8(5): 355-357
www.allresearchjournal.com
Received: 04-03-2022
Accepted: 24-04-2022

डॉ. रंजना ग्रेवर
सह–आचार्य (संगीत)
सी.एम.के. नेषनल पी.जी. गर्ल्ज कॉलेज, सिरसा, हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रंजना ग्रेवर
सह–आचार्य (संगीत)
सी.एम.के. नेषनल पी.जी. गर्ल्ज कॉलेज, सिरसा, हरिद्वार, उत्तराखंड, भारत

भारतीय शास्त्रीय संगीत में रसास्वादन

डॉ. रंजना ग्रेवर

सारांश
किसी भी विषय का आस्वादन करने से पूर्व उसके मूल तत्वों का विधिवत विश्लेषण कर लेने के विषय की सार्थकता बढ़ जाती है। वैसे तो विस्तार की दृष्टि से विषय अपने आप में इतना व्यापक है कि उसको समय–सीमा से बांधना असम्भव–सा लगता है। विषय आरम्भ करने से पूर्व संक्षेप में रसास्वादन पर प्रकाश डालना उचित व आवश्यक प्रतीत होता है। रसास्वादन पर विचार करने से पूर्व रस क्या है? इसका भाव क्या सम्बन्ध है? रस कितने हैं तथा रसों की निष्पत्ति किस प्रकार सम्भव है? यह जान लेना आवश्यक है। रस की व्याख्या को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है – ''ललित कलाओं का सृजन सौन्दर्य हेतु, प्रस्तुतीकरण, सौन्दर्यपूर्ण और उपलब्धि सौन्दर्यानुभूति है। सौन्दर्य का परिणाम है आनन्द, अतः कला के तत्त्वों में एक तत्त्व है सौन्दर्य और सौन्दर्य–तत्त्वों में एक तत्त्व है 'आनन्द' अर्थात् आनन्द तथा कला में महत्त्वपूर्ण एवं आन्तरिक सम्बन्ध है।

कूटशब्द : सौन्दर्यानुभूति, रसास्वादन, दृष्टि, रस, संगीत, सृजन

प्रस्तावना
'अभिनव भारती' में रसास्वादन को विलक्षण, लौकिक और अलौकिक है :
''रसना च बोधरूपयं किंतु बोधांतरेभ्यो लौकिकेभ्यो विलक्षणैव
उपाधातां विभावादीनां लौकिक विलक्षव्यात् ।''
मधुसूदन ने भी रसास्वादन का आधार इसी प्रकार स्पष्ट किया
काव्यार्थ निष्ठारत्य अद्याः स्थायिनः संति लौकिकाः।
निष्ठास्त्वरे तत्समा अप्य लौकिकाः ।।
'भक्तिरसायन' में कहा गया है कि कला की आधारभूत स्थिति अनुभव में होती है और धीरे–धीरे वह अनुभव एक सशक्त कलाकार की प्रतिभा के माध्यम से ग्रहणकर्ता की स्मृति में केन्द्रित होता है और उसकी कल्पनाशक्ति के आधार पर मानसिक भूमि में आकार ग्रहण करता है और उसे ही 'रसास्वादन' कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि रसास्वादन सौन्दर्यानुभूति अथवा आनन्दादुभूति है। प्लेटो ने भी कहा है कि 'सुन्दर वह है, जो। दर्शन या श्रवण के माध्यम से आनन्द देता है ।' टाल्सटाय ने बताया है कि 'सौन्दर्य सभी कलाओं में निहित आनन्द का व्यंजक है ।' प्रो.गिलबर्ट ने भी आनन्द को ऐन्द्रिय तुष्टि का परिचायक माना है। . जार्ज संटायना सौन्दर्य और आनन्द को एक–दूसरे का पर्याय मानते हुए कहते हैं कि 'आनन्द ही सौन्दर्यानुभूति है, जो विषय–पक्ष (वइरमबजपअपजल) में सौन्दर्य है, वही विषयी–पक्ष (नइरमबजपअपजल) में आनन्द है ।' वे यह भी मानते हैं कि 'सभी प्रकार का आनन्द सहज और विधेयात्मक मूल्य होता है, परन्तु सभी प्रकार का आनन्द बोध नहीं होता। संगीत–सम्बन्धी सौन्दर्यबोध के सम्बन्ध में यह विचार औचित्यपूर्ण है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति शास्त्रीय संगीत में निहित सौन्दर्य का बोध प्राप्त नहीं कर सकता। उत्तर–भारत एवं दक्षिण– भारत के संगीतमर्मज्ञ भी सौन्दर्यबोधगत आनन्द एक–दूसरे के क्षेत्र में नहीं ले सकते। यह अन्तर इस कारण दिखाई देता है कि सामान्य आनन्द और सौन्दर्यबोध में कभी–कभी इस आधार पर भेद किया है कि सौंदर्यबोध कलात्मक परितोष की निःस्वार्थता में निहित रहता है। आनन्द के दूसरे रूपों में हम ऐन्द्रिय परितोष करते हैं। जार्ज संटायना के उपरोक्त अभिमत से यह आशय ले सकते हैं कि कलात्मक आनन्द में एक प्रकार की निर्वैयक्तिता रहती है, जिसके आधार पर आनन्द के अन्य रूपों से उसे भिन्न माना जाता है। प्राचीन युग के आचार्य भरतमुनि, कोहल, दत्तिल, स्कंद, विश्वावसुय विकास युग के याष्टिक, शार्दूल, मतंग, आंजनेय एवं व्याख्या काल के कीर्तिधर, लोल्लट, रूद्रट, सागरनन्दी एवं रस के प्रतिनिधि आचार्य शंकुक, भट्टनायक आदि ने कला के निर्वैयक्तिता को ही स्पष्ट करने का प्रयास किया है। आधुनिक कलाशास्त्री संटायना के विश्लेषण के

आधार पर संगीत में संवेगात्मक तत्व ऐसा आत्मानन्द है, जिसे हम संगीतकला का सार्वभौम गुण मानते हैं। यही कारण है कि संगीत में विषयीगत (नइरमबजपअम) आधार भी बना रहता है और उसकी निर्वैयक्तिता के कारण वह विषयगत (वइरमबजपअम) भी रहता है। . अब हमें यह भी विचार करना होगा कि संगीत एक कला के रूप में किस प्रकार या किस माध्यम अथवा किस आधार पर रस उद्रेक करता है। हीगल के अनुसार, ललित कला के दो वर्ग हो सकते हैं। एक वह कला, जो नेत्रों द्वारा मानसिक तुष्टि प्रदान करती है। दूसरी वह जो कानों को तृप्ति प्रदान करती है। इस आधार पर पर्सी ब्राउन वास्तु, मूर्ति तथा चित्रकला को प्रथम वर्ग में स्थापित करते हैं ।इसके साथ ही संगीत तथा काव्य (श्रवण तथा पाठ्य) को दूसरे वर्ग में। दूसरी बात यह भी बताते हैं कि प्रथम वर्ग की कलाओं के लिए कितनी मूलाधार की आवश्यकता होती है। दूसरे वर्ग के लिए नहीं वास्तुकला में मूर्त आधार निम्न कोटि का होता हैय जैसे –ईट, पत्थर, लोहा, लकड़ी आदि, ये सभी वस्तुएँ मूर्त है। प्रकाश, छाया, रंग आदि साधनों द्वारा वह अपने दर्शकों के मन पर अपनी कृति का प्रभाव डालते हैं, अतः वास्तुकला के मूर्ताधारों को देखकर ही दर्शक के हृदय में आनन्दभाव का संचार होता है ।

सौन्दर्य केवल ऐन्द्रिय न हो, वरन् वह आत्मिक आनन्द प्रदान करता हो तो यही आत्मिक आनन्द साहित्य की भाषा में 'रस' नाम से अभिहित हो जाता है। 'रस' शब्द का प्रयोग परम सौन्दर्यानुभूति के सन्दर्भ में किया गया है –

रसोह्येवायं लब्धवाआनंदी भवति ।'

रस की सर्वप्रथम तथा सर्वाधिक चर्चा संस्कृत ग्रन्थों तथा साहित्य में की गई है। भरत से पूर्व भी भारतवर्ष में रस–चर्चा अवश्य हुई होगी, परन्तु प्राप्त ग्रन्थों में प्रथम, यथार्थ तथा समर्थ विवेचन हमें भरत के 'नाट्यशास्त्र' में ही उपलब्ध है। भरत द्वारा प्रतिपादित 'रस–सिद्धान्त' ही संस्कृत साहित्य में अमर हुआ। भरत ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में लिखा है – एते दृष्टो रसाः प्रोक्तं द्रुहिणममहात्मा ।' भरत ने आठ रस, आठ उसके स्थयी भाव, तैंतीस व्यभिचारी भाव और आठ सात्विक, इस प्रकार कुल उनचास भावों की सूची दी है। रस तथा भाव भाव ही रस का आधार हैं और इन भावों को स्थायी भाव की संज्ञा दी है। इसी लिए कहा भी है – स्थायी भावाः रसमाप्तुदंति' अर्थात् भाव ही रस को प्राप्त होते हैं। जो भाव रस तक नहीं पहुंचते , वह विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों का आश्रय लेते हैं। भरत ने आठ स्थायी तथा उनके अनुरूप रस बताए हैं। अभिनवगुप्त ने सर्वप्रथम शान्त रस को स्थानदेकर नवरस की कल्पना की ।

पश्चातवर्ती विद्वानों ने भी रसों की संख्या नौ मानी है। भरत ने रस–निष्पत्ति के संदर्भ में अपने 'रससूत्र' में लिखा है :

विभावानुभाव व्यभिचीसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः।

अर्थात् – विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी (संचारी) भावों के संयोग से रसनिष्पत्ति होती है। वैसे तो भरत का 'रस–सिद्धान्त' ही काव्य, साहित्य (नाटक–कहानी), संगीत आदि अन्य कलाओं पर लागू किया जाता है। जब हम संगीत के संदर्भ में रसास्वादन की बात करते है तो हमारे समक्ष कुछ प्रश्न स्वतः ही उठ जाते हैं, जैसे :1. संगीत तथा रस का सम्बन्ध कब से व किस प्रकार का है ।

संगीत में रसनिष्पत्ति–

प्रक्रिया किस प्रकार से सम्भव व सम्पन्न होती है। संगीत में रसनिष्पत्ति के माध्यम एवं तत्त्व कौन–कौन से हैं। संगीत तथा रस के सम्बन्ध की विवेचना भी हमें सर्वप्रथम 'नाट्यशास्त्र' में ही उपलब्ध होती है। भरत के पश्चात् सभी विद्वानों ने रस परिपाक बताया तथा यह परम्परा शारंगदेव तक चली ।

तेरहवीं शताब्दी में तथा उसके कुछ वर्षों बाद भी संगीत का सम्बन्ध रस से टूटा। इसका प्रमाण हमें अमीर खुसरो के ग्रन्थों से . मिलता है। तत्पश्चात् मानसिंह के काल में ध्रुवपद प्रचलन के साथ–साथ रागों का सम्बन्ध रस तथा भावों से पुनः जोड़ा गया और तब से (वर्तमान समय) आज तक संगीत का अटूट सम्बन्ध रस की भाव से माना जाता है ।

यह तो सर्वमान्य है कि 'रस' संगीत की आत्मा है। संगीत में रस–परिपाक के अनेक सहयोगी घटक हैं। जैसे – नाद, श्रुति, स्वर, राग, रचना, ताल, वाद्य आदि अन्य भी तत्त्व हैं, जिनके माध्यम से संगीत में रसों की सृष्टि सम्भव होती है ।।

(स) नाद : संगीत का मूलाधार है नाद। नाद कंठ और वाद्ययंत्रों की प्रसूति है। नाद के द्वारा मानसिक भावों की अभिव्यंजना होती है और इस प्रकार संगीत के संदर्भ में रस–सिद्धान्त का औचित्य स्थापित होता है। नाद जितना मधुर व मनोहारी होगा, उतना ही उसे सुनने की इच्छा प्रबल होगी तथा तन्मयता बढ़ेगी। पं. ओंकारनाथ ठाकुर तथा आचार्य बृहस्पति ने भी नाद के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा कि भाषा की अपेक्षा नाद के प्रभाव का क्षेत्र अधिक व्यापक है। नादसौन्दर्यजनित आनन्द का अनुभव प्रत्येक को होता है। सुख–दुख, शोक, प्रसन्नता, करुणा आदि के अतिरिक्त आत्मतृप्ति संगीत के द्वारा होती है।

तृप्तिगत प्रभाव डालने में संगीतकला सर्वोपरि मानी गई है। मूर्तिकला, चित्रकला अथवा वास्तुकला पशु–पक्षियों को प्रभावित नहीं कर सकती, परन्तु संगीत इसके लिए सक्षम है, जिसका आधार नाद ही तो है ।

(ऐ) श्रुति : प्राचीन काल से मध्यकाल तक श्रुतियों द्वारा ही रसनिष्पत्ति मानी जाती थी। जिस जाति की श्रुति हो, उस जाति से सम्बन्धित रस ही उस श्रुति के लिए मान्य था। यद्यपि आज हम श्रुतियों का सम्बन्ध पूर्ववर्ती विद्वानों की तरह तो नहीं जोड़ते, तथापि श्रुतियाँ रस से सम्बन्धित है, यह तो सर्वमान्य है हीय जैसे दरबारी के गांधार का आन्दोलन। दरबारी का गांधार कुछ नीचा है। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी श्रुति–विशेष का प्रयोग उसके आन्दोलन में है और यही आन्दोलन उसे गांभीर्य प्रदान करता है ।

(ग) स्वर : संगीत का शरीर अथवा व्यक्तित्व स्वरों के ताने–बाने में ही निहित है, अतः प्राचीन काल से ही स्वरों का 'रस' से सम्बन्ध मान्य रहा है। भरत से लेकर पं.भातखण्डे जी तक सभी ने समयानुसार स्वरों के सम्बन्धित भाव तथा निष्पादित रसों का वर्णन किया है। स्वर के अनेक रूपों द्वारा रस–प्रक्रिया संभव होती है। 1. स्वर के वादी–संवादी के प्रयोग से,

स्वर के विविध प्रस्तुतीकरण सेय जैसे गमक, मीड, कण, खटका, आंदोलन आदि, स्वरों की संख्यानुकूल जातिय जैसे संपूर्ण, षाडव तथा औडव, स्वर–सप्तक द्वाराय जैसे मन्द्र, मध्य तथा तार ।

उपर्युक्त स्वर–रूपों में परिवर्तन द्वारा भाव तथा रस से परिवर्तन हो जाता है। यहाँ तक न्यास आदि से ही राग बदल जाते हैं तो रस बदल जाना स्वाभाविक है ।

(म) राग : शास्त्रीय गायन की कोई भी विधा रही होय जाति–गायन, राग–रागिनी अथवा रागदारी हो, यह सभी राग के ही रूप हैं। यद्यपि भारतीय संगीत रागप्रधान है, तथापि रागों के रस क्या है, इस पर निश्चित मत नहीं हैं। वाद्य संगीत हो या कंठ संगीत भाव और रस का आधार राग ही होते हैं। राग के दस लक्षण रसनिष्पत्ति के सहायक तत्त्व है। राग के न होने पर भी शब्द (आलाप), ताल व वाद्य भाव उत्पन्न करने में सक्षम हैं।

(प) प्रबन्धः राग के अन्तर्गत ही संगीत में धुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, तराना आदि प्रबन्ध रचनाएँ हैं, जो अपनी शब्द–रचना और गठन द्वारा विभिन्न रसों की उत्पत्ति करते हैंय जैसे ध्रुवपद –वीर, करुण व गंभीर रस को, धमार–श्रृंगार रस को, ख्याल–शब्दानुकूल व रागानुकूल, टप्पा– तराना–श्रृंगार, हास्य

व रौद्रय ठुमरी, दादरा व चौती–श्रृंगार (संयोग व वियोग) रस की उत्पत्ति करते हैं।

(ध) वाद्यः वाद्य अपनी आवाज के आधार पर विभिन्न रसों की उत्पत्ति करते हैं। मोटी आवाजयुक्त वाद्य गंभीर रस पैदा करते हैंय जैसे वीणा, सारंगी, वायलिन इत्यदि। पतली आवाजयुक्त वाद्यय जैसे सितार, शहनाई इत्यादि श्रृंगार रस उत्पन्न करते है। इसी प्रकार मंजीरे, करताल, घंटे तथा घडियाल भक्तिरस उत्पन्न करते हैं। ढोलक, ढफ, तबला, खंजरी इत्यादि श्रृंगार रस को पोषित करते है। इसी प्रकार विभिन्न ताले व लय विभिन्न रस प्रदान करती हैय जैसे तिलवाड़ा, एकताल, झूमरा, करुण व शान्त रस। इसी प्रकार खुले बोलीवाले ठेके या ताल–चौताल, धमार, सूलताल व आढा चारताल वीर रस या भक्ति रस उत्पन्न करते हैं। कहरवा, दादरा और द्रुत–एकताल श्रृंगार रस पैदा करते हैं।

(नि) लयः विभिन्न प्रकार की लय भी हमें अलग–अलग रसों का आभास कराती हैंय जैसे विलम्बित लय करुण व शांत रस, मध्य लय श्रृंगार रस तथा द्रुतलय श्रृंगार व अद्भुत रस का आभास कराती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि राग, ताल, लय, रचना, वाद्य तथा कलाकार का कौशल इन सभी के सम्मिलित प्रभाव से संगीत में रस प्रवाहित होता है, अतः उपर्युक्त सभी के सम्मिश्रण से हमारे हृदय से जिस आनन्द की अनुभूति होती है, वही सौन्दर्यबोध अथवा रसानुभूति है। स्वर की दीर्घता, सुरीलापन, वादी, संवादी, विवादी आदि की द्वंदात्मक स्थिति एवं सम्बन्ध, मीड़ आदि के कारण नाद–सौन्दर्य की चरमावस्था– आती रहती है, जिसके कारण श्रोता बीच–बीच में अविस्मरणीय आनन्द की स्थिति में पहुँचते रहते हैं। इस स्थिति में शब्द की सत्ता समाप्त हो जाती है। उससे उत्पन्न अर्थ पीछे छूट जाते हैं। कौन से रस का राग है तथा कौन से स्वरों का प्रयोग हो रहा है, वह सब बातें अर्थहीन हो जाती हैं, तब जिस आनन्द की अनुभूति होती है, यह है रसास्वादन ।

संदर्भ सूची

1. डॉ. लक्ष्मीनारायण, निबंध संगीत
2. पंडित अहोबल, संगीत परिजात
3. डॉ. सोमनाथ, रागाविभोध
4. अमिता शर्मा, शास्त्रीय संगीत का विकास
5. डॉ. मधुबाला सक्सेना, संगीत मधुबन